८०. वृषभसेनस्याख्यानम्

नत्वा जिनं जगत्पूज्यं स्वर्गमोक्षसुखप्रदम्। वक्ष्ये वृषभसेनस्य सच्चरित्रं सतामिदम् ॥१॥
पुरे पाटलिपुत्राख्ये श्रेष्ठी वृषभदत्तवाक्। धनैर्धान्यैश्च सम्पूर्णः पूर्वपुण्येन शुद्धधीः ॥२॥
भार्याभूद्वृषभश्रीश्च पुत्रो वृषभसेनकः। श्रीजिनेन्द्र पदाम्भोजमहासेवाविधायकः ॥३॥
तन्मातुलो धनपतिः श्रीकान्ताकामिनीपतिः। तयोः सद्रूपसंयुक्ता धनश्रीश्चारुकन्यका ॥४॥
तां श्रीवृषभसेनोसौ परिणीय महोत्सवैः। भुञ्जानो विविधान्भोगान्सुधीः सौख्येन संस्थितः ॥५॥
एकदा दमधरस्य मुनेः पार्श्वे सुभक्तितः। श्रुत्वा धर्मं जिनन्द्रोक्तं मुनिः शीघ्रं बभूव च ॥६॥
धनश्री रोदनं चक्रे ततोसौ मातुलेन च। गृहमानीय कष्टेन कारितो व्रतखण्डनम् ॥७॥
अहो मोहयुतो जन्तु कार्याकार्यं न पश्यति। मत्तवत्कुरुते कर्मभूरिपापविधायकम् ॥८॥
स श्रीवृषभसेनस्तु कारागारे यथा नरः। गृहे स्थित्वा कियत्कालं संजातश्च मुनिः सुधीः ॥९॥

---

८०. वृषभसेन की कथा

स्वर्ग और मोक्ष का सुख देने वाले तथा सारे संसार के द्वारा पूज्य-माने जाने वाले श्री भगवान् को नमस्कार कर वृषभसेन की कथा लिखी जाती है ॥१॥

पाटलिपुत्र (पटना) में वृषभदत्त नाम का एक सेठ रहता था। पूर्व पुण्य के प्रभाव से इसके पास धन सम्पत्ति खूब थी। उसकी स्त्री का नाम वृषभदत्ता था। उसके वृषभसेन नाम का सर्वगुण-सम्पन्न एक पुत्र था। वृषभसेन बड़ा धर्मात्मा और सदा दान-पूजादिक पुण्यकर्मों का करने वाला था ॥२-३॥

वृषभसेन के मामा सेठ धनपति की स्त्री श्रीकान्ता के एक लड़की थी। उसका नाम धनश्री था। धनश्री सुन्दरी थी, चतुर थी और लिखी-पढ़ी थी। धनश्री का ब्याह वृषभसेन के साथ हुआ था। दोनों दम्पत्ति सुख से रहते थे। नाना प्रकार के विषय-भोगों की वस्तुएँ उनके लिए सदा हाजिर रहती थी ॥४-५॥

एक दिन वृषभसेन दमधर मुनिराज के दर्शनों के लिए गया। भक्ति सहित उनकी पूजा-वन्दना कर उसने उनसे धर्म का पवित्र उपदेश सुना। उपदेश उसे बहुत रुचा और उसका प्रभाव भी उस पर बहुत पड़ा। वह उसी समय संसार और भ्रम से सुख जान पड़ने वाले विषय-भोगों से उदासीन हो मुनिराज के पास आत्महित की साधक जिनदीक्षा ले गया। उसे युवावस्था में ही दीक्षा ले जाने से धनश्री को बड़ा दुःख हुआ। उसे दिन-रात रोने के सिवा कुछ न सूझता था। धनश्री का यह दुःख उसके पिता धनपति से न सहा गया। वह तपोवन में जाकर वृषभसेन को उठा लाया और जबरदस्ती उसकी दीक्षा वगैरह खण्डित कर दी, उसे गृहस्थ बना दिया। सच है, मोही पुरुष करने और न करने योग्य कर्मों का विचार न कर उन्मत्त की तरह हर एक काम करने लग जाता है, जिससे कि पापकर्मों का उसके तीव्र बन्ध होता है ॥६-८॥

जैसे मनुष्य को कैद में जबरदस्ती रहना पड़ता है उसी समय वृषभसेन को भी कुछ समय तक

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY

पुनस्तं च समानीय प्रपंचेन स मातुलः। गृहे शृंखलया पापी स्थापयामास कष्टतः ॥१०॥
पुनर्मां व्रतसच्छैलात्पातयिष्यति मानसे। संविचार्येति संन्यासं गृहीत्वा मुनिसत्तमः ॥११॥
मृत्वा समाधिना स्वर्गं संप्राप्तो निजपुण्यतः। दुर्जनैः पीडितश्चापि सज्जनो नाशुभे रतः ॥१२॥
भवतु दुर्जनको विपदाप्रदो विशदबुद्धिरसौ सुजनः पुनः।
जिनपतेः पदपद्मसुसेवनाद्भवति शर्मपतिर्निजपुण्यतः ॥१३॥

इति कथाकोशे श्रीवृषभसेनाख्यानं समाप्तम्।

८१. जयसेननृपस्याख्यानम्

सारलक्ष्मीप्रदं नत्वा जिनेन्द्रं मुक्तिनायकम्। वक्ष्ये श्रीजयसेनस्य भूपतेः सत्कथानकम् ॥१॥
श्रावस्तीपत्तने राजा जयसेनोभवत्पुरा। वीरसेना महाराज्ञी वीरसेनः सुतस्तयोः ॥२॥
वन्दकः शिवगुप्ताख्यो निन्दकः पललम्पटः। सोपि राज्ञो गुरुर्जातो धिङ्मिथ्यात्वमशर्मकम् ॥३॥
एकदा नगरे तत्र मुनिवृन्दसमन्वितः। समायातो मुनीन्द्रस्तु यत्यादिवृषभः सुधीः ॥४॥

और घर में रहना पड़ा। उसके बाद वह फिर मुनि हो गया। उसका फिर मुनि हो जाना जब धनपति को मालूम हुआ तो किसी बहाने से घर पर लाकर अब की बार उसे उसने लोहे की साँकल से बाँध दिया। मुनि ने यह सोचकर, कि यह मुझे अब की बार फिर व्रतरूपी पर्वत से गिरा देगा, मेरा व्रत भंग कर देगा, संन्यास ले लिया और इसी अवस्था में शरीर छोड़कर वह पुण्य के उदय से स्वर्ग में देव हुआ। दुर्जनों द्वारा सत्पुरुषों को कितने ही कष्ट क्यों न पहुँचाये जायें पर वे कभी पापबन्ध के कारण कामों में नहीं फँसते ॥९-१२॥

दुर्जन पुरुष चाहे कितनी ही तकलीफ क्यों न दें, पर पवित्र बुद्धि के धारी सज्जन महात्मा पुरुष तो जिन भगवान् के चरणों की सेवा-पूजा से होने वाले पुण्य से सुख ही प्राप्त करेंगे। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं ॥१३॥

८१. जयसेन राजा की कथा

स्वर्गादि सुखों को देने वाले और मोक्षरूपी रमणी के स्वामी श्रीजिन भगवान् को नमस्कार कर जयसेन राजा की सुन्दर कथा लिखी जाती है ॥१॥

श्रावस्ती के राजा जयसेन की रानी वीरसेना के एक पुत्र था। इसका नाम वीरसेन था। वीरसेन बुद्धिमान् और सच्चे हृदय का था, मायाचार-कपट उसे छू तक न गया था ॥२॥

यहाँ एक शिवगुप्त नाम का बुद्ध भिक्षुक रहता था। यह मांसभक्षी और निर्दयी था। ईर्ष्या और द्वेष इसके रोम-रोम में ठसा था मानों वह इनका पुतला था। यह शिवगुप्त राजगुरु था। ऐसे मिथ्यात्व को धिक्कार है जिसके वश हो ऐसे मायावी और द्वेषी भी गुरु हो जाते हैं ॥३॥

एक दिन यतिवृषभ मुनिराज अपने सारे संघ को साथ लिए श्रावस्ती में आए। राजा यद्यपि

FOR PRIVATE & PERSONAL USE ONLY